संपादक श्री सुधांशु'शेखर' चौधरी एवं सुकवि बन्धु श्री चन्द्रनाथ मिश्र "अमर"केँ धन्यवाद देब हम अपन पावन कर्त्तव्य बुझै छी। मिहिरेक उपसंपादक-द्वय श्री भीमनाथ झा एवं श्री गोकुलनाथ झा, "आर्यावर्त्त"क उपसपादक श्री मार्कण्डेय प्रवासी एवं श्री राजमोहन झा, ई सब हमर सिनेह-भाजन छथि—हिनका लै धन्यवाद नितान्त औपचारिक होयत; तेँ ई लोकनि हमर प्रेमक प्रसादे पर्वत रहथु, सैह हिनको अभीष्ट हयतनि आ हमरो लै शिष्ट !

मकर-संक्रान्ति, १४ जनवरी १९८२

१३ बी पथ, राजेन्दनगर, —आरसी प्रसाद सिंह

पटना-१६

□

बहुरुपिया

एक फूलक लेल बेधल प्राणकें जे शूल,
आइ धरि ओ भेल अछि ने मर्मसँ निर्मूल।
सुरभितँ फूलक क्षणिक आनन्द दऽ बहि गेल।
दर्द काँटक हीठ पाहुन आइ धरि रहि गेल।

एक किरणक लेल आन्हर राति लेलहुँ ओढ़ि।
भोर-भिनसर आँखिएमे कएल कहुना लोढ़ि।
एक सुख-सुविधाक चाखऽ लेल गौरव-मान,
बेर सय सय करऽ गेलहुँ कण्ठसँ विष-पान।

एक जन्मक लेल सय सय बेर भेलहुँ ठाढ़,
द्वारि पर मरणक अयाचित कामनासँ गाढ़।
कल्पनासँ बान्हि राखऽ लेल चानक बात,
साजि कऽ आनल तरेगन केर हम बरियात।
एक चानन लेल भटकल कतेक कानन गेल।
कतेक शैल-विशाल खोधल एक रत्नक लेल।
एक मोती लेल गेलहुँ सिन्धु-तलमे डूबि।
मुक्ति हेरल, हारि जीवनसँ, स्वयंसँ ऊबि।

एक पाथरसँ हजारो बेर फोड़ल माथ।
सुख पड़ायल रहल, छोड़ल दुख न कखनो साथ।
तृप्ति पल भरि लेल हम सम्पूर्ण जीवन देल।
जाहि कारण जगत तेजल, से न अप्पन भेल।

आ, ने जेकरा मान्यता देलिऐक निमिखोक लेल,
से उमरि भरि लेल धरना दऽ घरे बसि गेल।

हरिण कस्तूरी जन छे, कि अहँसँ अन्ध,
जाहि कारण विकल, से निज नाभि केर सुगन्ध ।

मोनमे सदिखन बसै छथि, आँखिसँ जे दूर।
जानि ने ओ के मधुर छथि, आ एहन के क्रूर ?

एक दिस तऽ चाट मारब आ दुलारब फेर,
एक करसँ लेब आ धऽ देब दोसर बेर।

एक मंगल रूप मोहन, रूप दोसर घोर।
एक निर्मम बनि कनाओल, एक पोछय नोर।

के एहन बहुरूपिया ? के कऽ रहल अछि खेल ?
जान ककरो जाए, उत्सव खेल ककरो लेल।

बूझि हम जेकरा रहल छी आन-आन अनेक,
नइ कि सय सय रूपमे बहुरूपिया अछि एक।

बिहार साहित्य सम्मेलन-भवन,
पटना,
२३ जुलाइ १९७२

प्रसारित, आकाशवाणी पटना,
६ अगस्त १९७२
प्रकाशित, "मिथिला दर्शन" (कलकत्ता)
जनवरी १९७२

विभावना

मने तऽ पाथर ने, वनक ने घास - पात।
कौखन जें भऽए जाए असहन, तऽ कोन बात ?
जीहे तऽ, कनेक जाए कौसन जें चूकि, भासि;
अपराधें फेकल की कहू जाए ई तरासि ?

जकरे मुइल बाप, पात तकरे ने पड़य भात ?
मने तऽ पाथर ने, वनक ने घास - पात।
पथरे तऽ थिक, ने किछु गाड़ल बाँसक मचान।
कौखन जें रस्तासँ बहकि जाए, की अजान ?

अपसोचे करब कियै ? के जानय अछि अगात ?
मने तऽ पाथर ने, वनक ने घास - पात।
माटिक मूरतियो तऽ पावय छै पान - फूल।
बरदो तऽ बसहा ओढ़ि घूमय छै लाल झूल।

बतहो जें ब'र, संग पुरिते छै बरियात।
मने तऽ पाथर ने, वनक ने घास - पात।
जोड़ल ई नाम गेल जैसन अहाँक संग।
चादरिमे हमर गेल बान्हल आँचरक रंग।

करबै की, लागि जाए कोनो जें मधुबसात ?
मने तऽ पाथर ने, वनक ने घास - पात।
काजर कैर कोठरीमे लगबेटा करय दाग।
कारिखसँ बाँचि निदग जायब थिक ब'ड़ भाग।

के कहौ, लगौने अछि कोन काँट कतऽ घात ?
मने तऽ पाथर ने, वनक ने घास - पात।

मानी तऽ गंगाजल, नञि मानी, तखन पानि।
भावनाक दुनियांमे मान्यतेक रहल मानि।

माथ पर बिहाड़ि, प्राण ताकय तंबू-कनात।
मने तऽ पाथर ने, वनक ने घास-पात।

मनक संकेत फुलत मौनक सय-सय गुलाब।
देहक भाषाक मुदा एकेटा छै जवाब।

रक्तक आवेग एक कात, लोक एक कात।
मने तऽ पाथर ने, वनक ने घास-पात।

पटना,
१६ जून १९७८

प्रसारित, आकाशवाणी-पटना,
१७ जून, १९७८

आत्म-ज्योति

घुआँ जकाँ बन्न घरमे हम औनाइ छी।
जरितो ने छी आ मिझाइयो ने जाइ छी।

(१)

मूने छी आँखि-कान, चेतना समाधिमे;
पहुँचै अछि जेना कोनो सुन्नसान खाधिमे।
सूनै छी अहृद नाद, की हम औंघाइ छी।
घुआँ जकाँ बन्न घरमे हम औनाइ छी।

(२)

काँचक दुर्भेद्य पारदर्शी मकान हो।
हवोक जतऽ नहि प्रवेश, निषेधक विधान हो।
गोंग छी बताह, कात चारू बौआइ छी।
घुआँ जकाँ बन्न घरमे हम औनाइ छी।

(३)

डूबै अछि देह मुइल सूर्यक प्रकाशमे।
शीशा केर भीत छेद आबै अछि पासमे।
अप्पन प्रतिबिम्बसँ अपनहि टकराइ छी।
घुआँ जकाँ बन्न घरमे हम औनाइ छी।

(४)

बिनु बाती-तेल दिया जरितै बेगारमे।
साँसो नहि अप्पन, नहि प्राणे अधिकारमे।
फाटल सन मेघ हम, सरँगसँ बिलाइ छी।
धुआँ जकाँ बन्न घरमे हम औनाइ छी।

(५)

भूख आओर तृप्ति बीच कोनो की फर्क ने?
दृष्टिमे पदार्थ, मुदा वाणी - सम्पर्क ने।
अपनहि हम रोग अप्पन, अपने दवाइ छी।
धुआँ जकाँ बन्न घरमे हम औनाइ छी।

(६)

यैह यदि आत्मा केर ज्योति स्वयं सिद्ध थिक।
ओकरासँ अन्हारे किये न नीक गिद्ध थिक?
पाँखिमे जकर आँखि मूनि कऽ नुकाइ छी।
धुआँ जकाँ बन्न घरमे हम औनाइ छी।

पटना,
१६ अक्टूबर, १९७८

प्रवेशिका

एक

कविताक परिभाषा भिन्न-भिन्न देश-कालमे भिन्न-भिन्न कवि द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकारेँ देल गेल छैक। केयो ओकरा जीवनकेर समीक्षा कहै छथि तँ क्यो मानै छथि जे अदम्य मनोभावनाक सद्यःस्फुरण कविता थिक। केयो जँ कविताकेँ आत्माभिव्यक्ति बूझै छथि, तँ केयो ठीक एकर विपरीत ओकरा जीवनसँ पलायन मानैत छथि। असलमे सब कविक आत्मानुभूति मे समानता रहितो सभक परिवेश, सामाजिकता एवं परम्परागत संस्कारमे अन्तर होइत छैं; आ, ताहि अनुपातेँ अभिव्यक्तिओमे तारतम्य रहैत छैं। एकरा अस्वाभाविक तँ एकदमे नहि कहल जा सकैत अछि। दृश्य वस्तु एकेटा रहितो जकर आँखि पर जाहि रंगक चश्मा चढ़ल छैं, ओकरा ओ वस्तु ताही रंगक बूझि पड़तैं। तेँ, सब कविक अपन-अपन दृष्टि होइत छैं आ सभक लेखनी ओकर अपन स्वाभाविक अनुकरण करैत छैं। जकरा हम साहित्यमे शैलीक नामेँ अभिहित करैत छियैं, से आओर किछु नहि, साहित्यकारक व्यक्तित्वे शब्द-रूपमे अभिव्यक्त भ' जाइत छैं, जाहिमे ओकर अध्ययन, मनन, स्वभाव-संस्कार, सबटा मिलि-जुलि क' एकटा नवीन रूप ध' लैत छैं। साहित्य-जगतमे ई विशेष शैली ओकर पहिचान भ' जाइत छैं—जेना कोनो व्यक्ति-विशेषकेँ हम ओकर खास कोनो बाजब, चलब वा स्वभावसँ, बिनु देखनो बूझि जाइत छियैं। मुदा, ई लक्षण कोनो पैघे कवि अथवा कालजयी साहित्यकारमे घटैत छैं। साधारण कविकाठी तँ अपन प्रयोजने-भरि कवि होइत छथि— एहिसँ ऊपर जयबा ले हुनका ने कोनो अभिलाषा होइत छनि, ने प्रयास। मात्र एक बेर कवि कहा क' लोक-मानसमे समादृत भ' जाइथि, वा कोनो राजपदाधिकारीक स्तुति-गान क' अपन स्वार्थ सिद्ध करा लेथि—बस, यैह हुनक काव्य-प्रतिभाक चरमोत्कर्ष मानल जा सकै अछि? तेँ, कहल गेल अछि जे अन्तरात्मामे सब मनुक्ख कवि होइत अछि, खास क' जुआनीक उन्मादक उठान-कालमे—जखन प्रेमक वंशी मधुर-मधुर सुरमे तान देब' लगै छैं! ककरो आँखिसँ आँखि मिल' लगै छैं! जुआनी तँ ऋतुराज छैं; जखन प्रेमक पुष्प फुलाइ छैं, मनक कोकिल डारि-डारि पर

कुहुकैं छै, अनुरागक भौंरा कुंज-निकुंजमे गुनगुनाय लगैं छै, तखन कोनो टा सहृदय व्यक्ति कवि भ'जा सकैत अछि—एहिमे कोनो व्यवधान नहि छै—ई सहज संभाव्य थिक। मुदा, जुआनी जुआनिये छैक। आयल पानि, गेल पानि, बाटे बिलायल पानि; यैह ले, वैह ले। केयो देखलक, केयो देखिते रहि गेल! आ बसन्त बिदा भ' गेल। फूल मुरझा गेल! वन-उपवन सुखा गेल! बिहाड़ि चलि गेल! भला बिहाड़ियो कतौ थिर रहऽवला अछि! एम्हर सँ आयल, ओम्हर पड़ायल! जा धरि बहैत रहल, ताधरि दुनियाकेँ झकझोड़ि क' राखि देलक! हलचल मचौने रहल! सूखल पात आ धूरा उड़बैत, आँखि मे बालू झोंकैत, गर्द-मिशान मचबैत, माथपर चढ़ि कऽ मुहजोर धुक्कड़ जोर सँ गरजैत रहल। आब उतरि क' कत' बिला गेल, पता नहि। आसमान जे पीअर-धुतूरसन भेल रहय, एकदम साफ उज्जर भ' गेल! तहिना साओन-भादवमे सब नदीमे बाढ़ि अबै छै; छोटको झील-डाबर पानिसँ लबालब भरि जाइत छै। जेना क्षुद्र नदी भरि चलि उतराई! तहिना, यौवन-काल अबिते सभक मन-मयूर नाच' लगै छै! कविताक रसबून रिमझिम-रिमझिम बरस' लगै छै आ छोट-बड़ सब तरहक बेङ, बड़-बड़ ढाबुस पतालक परदा तोड़ि कऽ बाहर निकलै छै आ गावय लगै छै—टर्र-टों, टर्र-टों केर गगनभेदी अवाजमे अपन वैदिक ऋचा! मुदा, पावस ऋतुकेँ बिदा होइते कत' निपत्ता भ' जाइत छै ओ साम-गाम गौनिहार बटुक-समुदाय,से कहि ने। तहिना, कवितासँ तँ लाखो तरुण अपन तरुणाइक प्रवेशिका-परीक्षा उत्तीर्ण करै छथि, मुदा आगू जखन गृहस्थीक पी-एच० डी० मे सन्तानक शोध कर' लगै छथि, तखन बूझि पड़ै छनि सही बाजारक भाव! आ, नोन-तेल-हरदिक तेहन बोखार चढ़ै छनि, जे एकदम बपहारि काटि क' कविताक छाम-पगहा तोड़ैत, नांगरि उठौने, सोझे पड़ाइ छथि, खरही दिस, तँ कहियो घुरिओ क' नहि ताकै छथि, जे ककर नाम छैक 'कविता'। मुदा, ई खासियत कवितामे छै कि जँ एको बेर गलतियोसँ केयो किछु जोड़ि-तोड़ि, तान-तुक मिला-जुला क' कविक पाँतीमे ठाढ़ भ' गेल, भले ओ कविताक टाँग तोड़ि क' कुकविएक हास्यास्पद उपाधि किये ने पौने होए, सदा-सर्वदा हीन-हियैत पुस्त-पुस्तैनी ले ओ कविक नाम सार्थक कर' ले भ' गेल। कारण जे, राष्ट्रपति, मंत्री, विधायक, सांसद आदि महामहत्त्वक जतेक स्वर्गीय पद छै,

ताहिसँ एकबेर गौरवान्वित भ' क' जे महानुभाव ! पुनः मृत्यु लोकमे अबैत छथि, तनिका नामक पूर्वमे "भूत" लागि जाइत छनि। ओ भूतपूर्व अमुक मंत्री वा सांसद-विधायक कहब' लगैत छथि ! मुदा, कवि एहन अविनाशी पद होइत छै, परब्रह्म परमात्माक वाचक बूझू- 'यं प्राप्य न निवर्तन्ते तं धाम परमं मम', जाहि ठाम पहुँचि क' फेर घूरि अयनाइ संभव नहि होए, से थिक हमर परम धाम— जे एक बेर जँ कोनो व्यक्तिकेँ पाछु लागि जाए, तँ फेर कबाछ जकाँ देहमे सटि जाए। जिनगी भरि कोनो-ने-कोनो उपद्रव करिते रहय। एक बेर जहाँ जनतासँ 'श्रद्धया हेलया वा' कवि कहा लेल कि ओकर ओ जन्मसिद्ध अधिकार भ' गेलै ! तेँ एकटा जँ असली कवि छथि, तँ हजार-हजार एहने कविकाठी नगर-नगर गाम-गाममे विचरण क' ढाकीक ढाकी यश, धन आ मान लूटि रहल छथि, जनिके लेल कहल गेल छै—

अन्तः शाक्ता बहिः शैवाः सभामध्ये च वैष्णवाः ।
नाना रूपधराः कौला विचरन्ति महीतले ॥

अर्थात् भीतरसँ शाक्त, बाहरसँ शैव; आ सभामे वैष्णव—एहि प्रकारेँ अनेक रूप धयने कौल विचरि रहल छथि भूतल पर ! एहि ठाम "कौल"क स्थानमे कवि राखि दिअ, तँ वर्तमान युगधर्ममे बिल्कुल फिट भ' जाइत छै।

अर्थशास्त्रक एक प्रसिद्ध सिद्धान्त प्रायः बूझल होयत, जे बाजारमे जखन नकली सिक्काक भरमार होइत छै, तँ असली सिक्का पर मारि पड़ै छै ! आन कोनो कुरुक्षेत्रमे जे परिस्थिति होए, मुदा कविताक क्षेत्रमे तँ आइ कौरवोक प्रचण्ड सेनाक तेहन ने जमघट भेल छै,जे अर्जुन सनक वीर धनुर्धरोक माथसँ पसेना छुटि रहल छनि ! गाण्डीव लड़खड़ा रहल छनि ! पयर थरथरा रहल छनि ! असलमे नीक कविता करब तँ कठिन होइते छै, किन्तु कुलवधु जकाँ कविता-कामिनीक हाथ धयने जीवन-पर्यन्त निवाहब महाकठिन एवं दुःसाध्य योग थिक ! कि रोग थिक— केयो भुक्तभोगिए कहत ! मस्तमौला कबीरक भाषामे जँ ई बात बाजल जाय, तँ किछु एहिना होयत- "जो घर फूकें आपना, चले हमारे साथ।" आब, एहन 'घर फूँक तमाशा' जे क' सकय, सैह ने धरय कविता-कामिनीक हाथ ? जुआनी जखन सोझे अन्ध आवेगक प्रबल प्रेरणा रहैत छै, तखन कवितामे जे सौन्दर्य, रस एवं प्राण-

धारा वहैत बूझि पड़ैत छै, सैह मनोभाव जँ पाछाँ बनल रहि जाय, तँ किये ने भवभूति जकाँ अनन्त धैर्य धारण क' केयो सुकवि ई कहबामे सहज समर्थ भ' सकै अछि, जे "कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।

दू

कविवर कीट्सक एकटा सुप्रसिद्ध सूक्ति छनि—

"Beauty is truth, truth beauty that is all

Ye know on earth, and all ye need to know"

तात्पर्य जे सौन्दर्य सत्य थिक, सत्य सौन्दर्य, बस, धरती पर एतबे तों जानै छें, आ एतबे जानब तोरा जरूरी छौ। पाश्चात्य काव्यक दृष्टि जत' धरि पहुँचि सकल, से एहि कथनमे देखल जा सकैत अछि। मुदा, भारतीय साहित्यिक चिन्तन-बिन्दु सत्य आ सौन्दर्य धरि नहि अपन मापदण्ड स्थापित करैत अछि, वरन् ओहूसँ आगाँ किछु डेग बढ़ा क', ओहि ठाम, कैलाशक चोटी पर चढ़ि क' मानसरोवरक किनारमे अपन झंडा फहराबैत अछि, जत' कि कहल जाइत छै, परम शिवक निवास छनि! भारतीय साहित्यक यैह मंगल विधायक स्वर छै, जे वैदिक युगसँ ल' क' आइ पर्यन्त अनेक रूप-रूपान्तर आ विधा-सुविधामे प्रतिगुंजित होइत आबि रहल छै; यैह हमर काव्य-पुराण-इतिहास-नाटक, सभकेर परम लक्ष्य रहल अछि। आ यैह अमृत प्रसाद बाल्मीकि-व्याससँ ल' क' विद्यापति, तुलसी, रवीन्द्र आ प्रसाद धरि जे कविर्मनीषी लोकनि भेल छथि, से दुनू हाथे भरि-भरि क' वाणीक माध्यम सँ जन-गणमे वितरण कयने छथि! तुलसी जखन कहै छथि 'मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ' तखन हुनको हृदयमे यैह भावना रहल हयतनि। आ विद्यापति तँ स्वयं तत' पहुँचल छलाह, जे साक्षात शिव उगनाक रूप ध' हुनक सेवामे आबि गेल रहथि। ओना तँ ई कथा मिथिलामे निर्विवाद रूपसँ तथ्येमे परिगणित होइत अछि; मुदा, जँ कनेक कालले' एकरा काल्पनिको मानि ली, तँ एहिसँ बढ़ि क' की मधुर आ प्रीतिकार सत्यो होइत छै? Truth is sometimes stranger than fiction अर्थात् 'सत्य कखनो कल्पनोसँ, विस्मयकारक होइत छै'—आंगल भाषाक एहि कहबीमे कोनो अतिशयोक्ति नहि छै! शिवक आराधनामे विद्यापति एतेक सायुज्यता प्राप्त कयने छला, जे अन्तमे ओ स्वयं शिव-स्वरूप भ' गेला। कहल जाइत छै, जे

भक्त कवियित्री मीरो अपन आराध्य-देव गिरधर गोपाल केर प्रतिमाक आगा नचैत-नचैत ओहीमे समा गेली ! फेर केयो हुनका आपस होइत मानवी-रूपमे नहि देखलकनि ! सम्पूर्ण भारतीय साहित्यक यैह तेसर आयाम रहल अछि, जे ओकर आप्त वाक्य "सत्यं शिवं सुन्दरम्" सँ अभिव्यक्त होइत छै। आचार्य मम्मट जखन काव्यक प्रयोजनीयता पर प्रकाश दैत कहै छथि—"काव्यं (१) यशसे (२) अर्थकृते (३) व्यवहारविदे (४) शिवेतरक्षतये (५) सद्यः परनिर्वृतये (६) कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे" तखन एक क्रमसँ ओहो एही बिन्दुकेँ भास्वर करैत छथि ! अर्थात् काव्यक प्रयोजनमे यश-प्राप्ति, अर्थ-लाभ आ व्यवहार-ज्ञानक संगे-संग अमंगलक नाश एवं परम मोक्ष (कल्याण)क प्राप्ति, सेहो होइत छैक ! तेँ कविगुरु कालिदासक उक्ति "मन्दः कवियशः प्रार्थी" केँ चरितार्थ क' मात्र यशे पर रहि जाय, तइयो बहुत किछु भेल, कहि सकैत छी। बहुतो श्री-सम्पन्न व्यक्ति, जनिका पर्याप्त धन छनि, मात्र यशेक आकांक्षी भ' कविता-क्षेत्रमे पदार्पण करैत छथि ! हमरो तँ पहिने वाहवाहिए लूटऽक जबरदस्त आकर्षण छल, जे कविता दिस जेना बरजोरी बहा क' ल' गेल ! कोनो उर्दू-कवि कहने छथि—"सौ बोतलों का नशा है एक वाह-वाह मे !" से, कवि कहयबाक ई हविशमे जानि ने कतेक तरुण-हृदय भासि गेल। अथाह पानिमे जा क' डूबि गेल ! जे बाँचल, से अर्थक चक्करमे पड़ि क' चकघुम्मरि खेल' लागल ! अर्थक घनचक्करसँ जे बाँचि क' निकलि सकल, तकरा व्यवहार-ज्ञान भेलै। यथार्थमे कविताक वास्तविक वैह किछु पौलक; नहि तँ अर्थ आ यश दुनू सेवाय पगलपनि केर आओर किछु ठोस महत्व नहि रखैत छै। व्यवहारेसँ कवि-लोकनि महानताक सीढ़ी पर चढ़नाइ शुरू करै छथि आ क्रमशः अर्थ, धर्म, काम आ मोक्ष नामक पुरुषार्थ-चतुष्टयकेँ पाबि जीवन-साफल्य करै छथि ! भारतीय कविता-धाराक यैह सनातन लक्ष्य छै। जीवनसँ ओ पलायन नहि थिकै; वरन् सांगोपांग जीवनकेँ स्वीकार करैत, आलिंगन दैत, कविता-पथ पर पयर बढ़बैत, मोक्ष, मंगल किंवा परमात्मा धरि पहुँचि क' परम विश्राम पाबि ली—तखने बुझू, कविताक सार्थकता भेल ! नहि तँ, ओना मात्र तुकबन्दी क' लेब, मात्रा जोड़िकऽ छन्द बना लेब, अथवा आइकाल्हिक जमानामे तँ सेहो मगजपच्ची आ पिंगल-डिंगलक माय। दर्दे दूर जाय दिअऽ. दू-चारि पाँती अललटप्पू जोड़ि लिअऽ, दू-चारि गोष्ठी मे पढ़ि दिअऽ, कोनो सरकारी विज्ञापन पर जीवऽवला दू-छदामी अखबारमे

छपा लिअऽ, अहाँ बेस नीक कवि भ' गेलहुँ ! श्रोताकेँ कसि क' बोर करऽवला मनुक्ख भऽ गेलहुँ । आब जँ साझ्क बेरमे हाटसँ तरकारी लाब'ले विदा भेलहुँ आ कदाचित कोनो गप्प गोष्ठीमे कविता सुनबैत भोरो भ' जाइ, तँ राति-भरि नेना सभक उपवास आ पत्नीक आक्रोश ले केयो अहाँकेँ दोषी ने बनाओत ? अहाँ भारतीय संविधानक कोनो दण्ड प्रक्रियासँ ओहिना छुटि जायब, जेना गर्भ परिपक्व भ' गेला पर मायक पेटसँ बच्चा छट-द' छुटि कऽ बाहर निकलि जाइत छै ।

तँ, खुलासा कथन यैह रहल जे 'सत्यं शिवं सुन्दरम्'क समस्त पद-विन्यासे काव्यक आत्मा थिक ! आ प्रत्येक श्रेष्ठ कविक यैह लक्ष्य रहलनि अछि—यैह होयबोक चाही ! वस्तुतः 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' कोनो तीनटा पृथक-पृथक गुण नहि छै, वरण् एक दोसरामे नीक जकाँ ओतप्रोत एकेटा अभिन्न चैतन्य तत्व छै जे एहि पार्थिक जीवनक समग्रतामे सक्रिय अछि ।

तेँ ई कहब जे कविता कोनो एहि जीवनसँ नितान्त फराक वस्तु थिक, से उचित नहि ! "कला केवल कला वास्ते"क सिद्धांत माननिहार जे विद्वान लोकनि छथि, ओहो "शिव"केँ छोड़ि क' कोनो तेहन अनगल बात नहि बाजि सकै छथि, जाहिसँ सत्य आ सौन्दर्यमे कोनो व्याघात पहुँचय । यदि ओ साक्षात् मंगलक कोनो गप्प नहि चलाबथि, तइयो जँ हुनक कला सत्य आ सौन्दर्यक विन्दुकेँ नीक जकाँ धयने चलि रहल छनि, तँ हुनकासँ अपन अमगल भले भ' जाइन; मुदा, संसारक मंगल अवश्ये होयतै । कारण, दीप दीपे थिकै । खाहे ओ राजभवनमे जरय कि श्मशान मे—ओकरासँ संसार केँ प्रकाश भेटबे करतै ! ओकर शब्द ओहि डंका अथवा चारणक काज करैत छै, जे स्वयं नहि लड़ैत छै, मुदा जकर ललकारि पर जुझाऊ बीर महाभारत मचा दैत छै ! किन्तु, शब्दक महायात्रा एही ठाम नहि रुकि जाइत छै । ओ आओर आगाँ बढ़ैत छै आओर आगाँ ! जयशंकर प्रसाद जीक वाणीमे —"इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रान्त भवनमे टिक रहना ! किन्तु, पहुँचना उस सीमा पर, जिसके आगे राह नहीं ।" उपनिषद् जकर उद्घोषणा क' रहल अछि—"चरैवेति, चरैवेति ।"

तान

तँ, शब्द ब्रह्म जखन ओहि सीमान्त पर पहुँचि जाइत छै, जत' ओ मन्त्र बन' लगै छै; बच्चाकेँ खेलाइत-खेलाइत जेना कोनो बिजलीक तारसँ

एकाएक झटका लागि जाय—अनुभूतिक आंगुरसँ जेना ककरो चेतनाक ओ चिनगारी छुआ जाय, जकर अनुभव पहिने कहियो ने भेल होय— अथवा, मन, प्राण कि देहक स्तर पर कोनो एहन मर्मान्तिक पीड़ा होअय;ककरो मृत्यु कि कोनो प्रिय वस्तुक बिछोह; तँ फेर ओ व्यक्ति जँ असाधारण होअय,तँ कदापि वैह ने रहि जाय ! अवश्य ओकरामे महान् परिवर्त्तन घटित होयतै। ओकर अपने शब्द माङ करतै, ओकर अपने प्रकाश ओकरा उठौतै, ओकर अपने आत्मा ओकरा चेतौतै ? कहतै—ई सुन्दर-सुन्दर शब्द-जाल कि आने ले बुनि रहल छेँ ? कल्पनाक ई पँच-पँच राजमहल कि दोसरे कोनो राजा ले बना रहल छेँ ? ई अमृतक परोसल थारी कि अतिथिए-अभ्यागत केर आगू राखल जा रहल छै ? ई उत्सव, ई भोज-भण्डार, ई नाच-गान ककरा ले छै ? आनक घरे-घर तोँ देवाली मना अयलेँ, आ देख तँ तोहर अपन घरमे एकोटा दिया-बाती ने ! दोसराक दुआरिए-दुआरिए तोँ खेल-तमाशा कऽ अबै छेँ, आ तोहर दुआरि पर भख लोटै छौ ! एकटा कुकुरो-बिलाइ हुलकी दै ले नहि अबै छौ ! तखन ओकर अपने शब्द दंश भ' जाइत छै ! कचोटै छै ! उत्तेजना दै छै !

डाक्टर-वैद्य स्वयं रोगी भ' जाइ छै, मुदा तइयो ओ आन रोगीक उपचार नहि छोड़ै छै ! कारण, जे ई अंकर पेशा थिकै ! पेटक धंधा ? मुदा अपन परिवार अथवा स्वयं अपने पर ओकर दवाइ प्रभाव-हीन भ' जाइत छै। जँ रोगी पूछय जे हे कविराज-डाक्टर महोदय ! अहाँ अपन इलाज तँ अपने कइये ने सकै छी आनक रोग कोना छोड़यबै ! पहिने अपन इलाज तँ करू ! तखन, कि हयतै, से कहू ! जकरा पर एहन विपत्ति अबै छै तकरा ले महान् संकट-घड़ी उपस्थित भ' जाइत छै ! ओ चुप नहि रहि सकैत छै। अपन आत्मासँ लड़ि क' के कखन विजयी भ' सकल अछि ! सौंसे दुनिया यदि जीतिओ लेअय केयो, तइयो एहिठाम आबि क' की नेपोलियन की हिटलर, सबकेँ माँटि चाटइये पड़तनि ! से जखन शब्द-ब्रह्म जागै छै, तँ महा-सरस्वतीक मोहक रूप महाकालीक नृत्य-मुद्रामे बदलि जाइत छै ! ओ भयंकर रूप देखि क' केयो नजरुल इस्लाम बताह़ो भ' सकैत छथि ! कोनो "निरला" सनकिओ जा सकैत छथि ! केयो स्टीफन ज्विग (जर्मन भाषाक विश्व-विख्यात उपन्यासकार) आत्महत्यां क' सकैत छथि !

संभवत: कविक एही मनोदशाक चित्रण करैत आंगल भाषाक महाकवि वर्ड्‌सवर्थ कहने होयताह : —

We poets in our youth begin in gladness;

But thereof come in the end despondency and madness.

अर्थात्, हम कवि लोकनि जुआनीमे आरम्भ करै छी प्रसन्नतासँ; आ, अन्तमे हाथ लगै अछि कि तँ नैराश्य आ विक्षिप्तता ! कहबाक प्रयोजन नहि जे आइ जनिका आँखि छनि खुजन माथ पर, से प्रत्यक्ष देखि रहल छथि जे कविक अन्तिम अवस्थाक जे चित्रण वर्ड्‌सवर्थ कयने रहथि अपन कोनो जमानामे, से आब ओकर चर्च की ? आ कविक जुआनिए प्रारम्भ होइ छै कुण्ठा, संत्रास आ आक्रोशसँ। आब हिसाब लगा क' बयो देखि सकैए जे कविक जुआनीमे पतझड़ लागि गेलनि, तँ हुनक बुढ़ारी जँ ऋतुराजक दर्शन क' सकय, तँ यैह बूझल जाय जे इहो कलियुगेक प्रभाव भेल होयत, जे अनहोनिओकेँ होनीमे बदलि सकैए ! ओना हमरा साहित्यक कोनो वादसँ लेब-देब नहि अछि। कविता नव होअए, कि पुरान ! ई बात तँ जाय दिअ। पहिने ई तँ देखल जाय, कविता छै कि नहि ? ओहिसँ कोनो रस भेटै छै कि नहि ? मुदा, जे रस, छन्द, अलंकार, ध्वनि सभपर 'अग्निश्च वायुश्च भेल छथि, पुरान सभ परिपाटीकेँ जड़ि-मूलसँ उखाड़' पर कटिबद्ध छथि, हुनका ले कालिदासोक एहि उक्तिक कि कोनो मूल्य रहि जाइ छै—"पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्"।

हम हिन्दीसँ मैथिलीमे आयल छी। एखनो मैथिलीक संगे-संग हिन्दीओक विपुल रचना-विरचना चलैत रहै अछि। हमरा छात्रावस्थामे पढ़ाओल गेल छल जे विद्यापति हिन्दीक कवि छलाह। तखन हम विद्यापति केर पद-लालित्यक सौष्ठव हिन्दीएमे पाबैत छलहुँ। श्री रामबृक्ष बेनीपुरी द्वारा संपादित "विद्यापति-पदावली" पर मुग्ध भेल छलहुँ। श्री भोला लाल दास एवं श्री कुलेश्वर कुमर द्वारा संपादित "मिथिला"क पाठक छलहुँ, मुदा भावना यैह छल जे मैथिली कोनो स्वतंत्र भाषा नहि—हिन्दीएक एकटा बोली मात्र थिक। जेना मगही, भोजपुरी, ब्रजभाषा, अवधी, बुंदेलखंडी आदि। मुदा, एक दिन ज्ञान झाक योगसँ ई आभास होयबामे कोनो दुविधा नहि भेल जे मैथिलीक अपन स्वतन्त्र अस्तित्व छै आ ओकर अपन

इतिहास एवं साहित्य-परम्परा छै। ई तँ बेहद बात भेल, जे हम एकटा कथाक माध्यमसँ नीक जकाँ कहऽ चाहै छी। कोनो राजाक रानीसँ एकटा बड़ सुन्दर कन्या जन्म लेलकै, मुदा जेँ कि ओकर जन्म मूल नक्षत्रमे भेल छलै, तेँ पंडित लोकनि केर विचारसँ ओकरा कोनो प्रखर नदीक धारमे काठक मंजूषामे बन्न क' प्रवाहित क' देल गेलै। संयोगसँ, भसिआइत-भसिआइत ओ कन्या कोनो दूर-दराजमे एहन घाटसँ लागि गेली, जाहि ठाम एकटा धोबी कपड़ामे साबुन लगाकऽ फींचि रहल छल। आ, जहिना पौलक काठक मंजूषा, तहिना कोनो अशर्फी-मोहरक लोभे झट खोलि क' देखलक, तँ आँखिक बीझ छूटि गेलै देखिक' एकटा दिव्य कन्या। स्वर्गक परी-सन सुन्नर! मनोहर कान्ति! आ मंजूषामे ओहि कन्याक चारू कात, सोनाक गहना आ चानीक रूपैयाक अँबार लागल। धोबीकेँ तँ ई सब देखि क' आँखि चोन्हिया गेलै! आब ओ कथी ले कपड़ामे साबुन लगायत? कन्या सहित ओहि मंजूषाकेँ माथ पर उठौने भागल-भागल घर आयल आ ओहि कन्याकेँ देव-कन्या जकाँ पोस' लागल। ओहि कन्याक धनसँ एके दिनमे धोबीक दरिद्रा पार भ' गेलै आ हँसी-खुशीसँ जीवन बितब' लागल। लोग-पड़ोस मे ओहि कन्याकेँ धोबिएक बेटी बूझैत छलै आ धोबिओ एहि बातक प्रचार कयने छल! किन्तु, कालान्तरमे जखन ओ कन्या बढ़ि क' जुआन भेली आ हुनक रूप, शील, स्वभावक चर्चा चारू दिस गुलाबक फूल जकाँ गमकऽ लागल तँ कोनो राजाक अलबेला बेटा एक दिन आयल आ कन्याकेँ देखिते ओकर लक्षणसँ झट चीन्हि लेलक जे ई तँ राजकन्ये भ' सकैत अछि— धोबीक बेटी नहि! आ ई बुझिते ओ कन्याकेँ बाँहि पकड़ि क' उठौलक आ घोडा पर चढ़ा क' अपन राजधानीमे लऽ आनलक, जत' ओकरासँ विधि-पूर्वक विवाह रचा क' ओ अपन राजरानी बना लेलक। "मैथिली"क सम्बन्धमे हमरा जे अभिज्ञान भेल, तकर अनुमान किछु एहि कथाक प्रसंगसँ कयल जा सकै अछि। नहि तँ महाकवि कालिदासक नाटक "अभिज्ञानशाकुन्तलम्" मे वर्णित ओहि मर्मस्पर्शी घटनासँ, जत' शकुन्तलाक आँगुरमे अपनहि हाथसँ पहिराओल अंगुठीकेँ बिसरि, पुनः मन पड़यबाक कारणे चीन्हि क', राजा दुष्यन्त हर्षोत्फुल भ' जाइत छथि। एहने कोनो सुअवसर पर स्वर्गीय अमरनाथ झाक साहसिक उद्गार पढ़' ले भेटल छल, जाहिमे ओ अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनक मंचसँ अपन अध्यक्षीय भाषणमे निर्भीकता-

पूर्वक बाजल छलाह जे मैथिली हमर मातृभाषा अछि आ हिन्दी राष्ट्रभाषा ! तखन हमरो बुझ'मे फेर कोनो ततमत नहि रहल जे दुनू भाषामे कोनो तात्विक विरोध नहि छै। दुनू एके धरती आ माटि-पानिक उपजा छै। आ दुनूक अपन स्वतन्त्र अस्तित्व, स्थान आ साहित्य छै। दुनूक सेवा संगे-सग चलि सकै छै। एहि विचारमे कोनो प्रकारक बाधा-विरोध वा संकट-मकट नहि होबक चाही।

चारि

मैथिलीमे एखन नव-कविता, अकविता वा एहने कोनो दू-चारि टा वाद-विवाद चलि रहल छै। मुदा, हिन्दीमे बहुत पहिनेसँ अनेको वादक अन्हड़-बिहाडि, धुआँ-धुक्कर आबि रहल छै, जकर छाप मैथिलीओ पर पड़ल हो, तँ असभव नहि ! कारण कि जखन पश्चिमक हवा-बौखी भारतक विशाल अँगनामे पात उड़ब' लगै छै, तँ मैथिली आ हिन्दी तँ संगे-सग खेल'-धूप' वाली सखी-सहेली जकाँ थिकी ! केयो छोट, केयो बड़ सैह ने ! आ, बड़क प्रभाव छोट पर पड़िए जाइत छै ! डा० जगदीश गुप्त एक बेर हिन्दीमे तत्काल चलैत सब तरहक वादक कुल संख्या ४५ कि ५० धरि एक-एक केर नाम ध' क' गना गेल छलाह, जेना, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद हालावाद, प्रपद्यवाद, भूखी पीढ़ी, नंगी पीढ़ी आदि-आदि। मैथिलीओ मे ओकर किछु सुगबुगाहटि सुनाइ पड़' लागल छल; किन्तु ओ साठोत्तरीक पुरान गप्प आब एहि दशकमे किछु ठंढा पड़ि गेल छै—ओकर गर्मी झड़क, ताओ जे पहिने धीपल तावा जकाँ फराकेसँ लहरैत अपन अस्तित्वक परिचय दैत रहय, से आब धीरे-धीरे शान्त ज्वालामुखी-जकाँ लावा उगलि क' राख भ' रहल छै। आ ओ दिन शायद बेसी दूर नहि, जखन अकविता-वला अकवि-लोकनि फेर घुरि क' कविताक झोड़ी लेने छन्दक दरवज्जा पर अपन राशन ले क्यू मे ठाढ़ भ' जाथि। भगवान करथिन, तँ एतेक सुबुद्धि तँ हुनका कोखन बबइएक चाहियनि। मुदा, हमरा व्यक्तिगत रूपेँ एहिसँ कोनो प्रसन्नता वा आश्चर्य होयबाक संभावना नहि। कारण जे कालक ई चक्र चालि तँ चलिते रहैत छै। घड़ीक पेंडुलम जकाँ एक छोड़ पर जा क' फेर दोसर छोर दिस घट द' घुमनाइ ओकरा ले जरुरिये छै। से जे नहि होअए, तँ कालक नाम व्यर्थ भ' जाय आ सृष्टिमे एकरसता कि जड़ता आबि जाय, जे सृष्टिकर्त्ताक उद्देश्यक विपरीत बात थिक। जेँ कि अकविता अथवा एहने कोनो सविशेष

साहित्यक वाद, जे परम्पराक विरोधमे ठाढ़ भ' एकदम अपन मूलोच्छेद कर' पर फाँड़ बान्हने अछि, जँ कोनो तरहेँ जीवित रहि सकय तँ ओ कवि कालिदासक कविजन्म केर पूर्ववर्ती मूर्ख़तेक औचित्य सिद्ध करत, जाहि प्रसंगमे किंवदन्ती छै जे ओ जाहि गाछक डारि पर बैसल छलाह तकरहि कुल्हड़िसँ काट पर लागल छलाह। तँ ओकर चिन्ता हमरा कहियो ने भेल, जे अपन मौतकेँ अपने बजा क' आन' चाहै अछि। मुदा, एकर तरद्दुद तँ कखनो भइए जाइ अछि जे आइ कवि-लोकनि भौतिक लोभ-लालचमे पड़ि क' राजनीतिक शतरंज केर मात्र पयदल गोटी भेल छथि, आ सस्त मनोरंजन किवा कहल जाय, तँ विशुद्ध भड़ैती पर उतरि आयल छथि, ताहिसँ कि हुनक कल्याण होयतनि? कि देशक! जन-मानसमे अपन चेहरा बिगाड़ि क' ओ स्वयं तँ अपमानित भइये रहल छथि, कविताकेँ लेने-लेने रसातलमे पहुँचा देलथि।

आइ भारतेमे नहि पूरा भूमण्डलेमे उथल-पुथल, मारि-काट, आपाधापीक बाजार गर्म भेल छै! असमानता, वैषम्य, आ विद्रोहक वातावरण सर्वत्र व्याप्त छै। हम एहि प्रखर सत्यसँ इनकार नहि कर' चाहैत छी जे मानव अपनी करनीसँ सर्वनाशक कगार पर ठाढ़ भेल अछि! पापक बोझासँ नाव भरि गेल छै। 'आब डूबल, ताब डूबल'—जकाँ परिस्थिति भ' रहल छै। कखन कोनो विस्फोट भ' जाय आ सम्पूर्ण मानवताक विकास एकाएक पृथ्वी-तलसँ लुप्त भ' जाय—भाफ जकाँ अदृश्यमे बिला जाय—कोनो ठेकान नहि! एहन दुर्भाग्यपूर्ण घड़ी मानव केर इतिहासमे हजारो-हजार वर्षक बाद अबै छै। तँ यदि युवापीढ़ीकेँ जनमिते ठाढ़ भेला पर कुण्ठा, सन्त्रास आ आक्रोशक मेघ घेरि लै छै, तँ कथमपि कोनो अस्वाभाविक कथा नहि। मुदा, इहो स्मरण रखबाक चाही जे खाहे कतबो कुण्ठाक बदली ने घेरि लिए, चेतना केर सूर्यक प्रकाश पाछाँमे विद्यमान रहितै छै। लाखो-करोड़ो मेघमालाक पुंज-पहाड़ ओकरा सदा-सर्वदा ले झाँपि क' नहि राखि सकै छै। कखनो-ने-कहियो ओकर प्रचण्ड किरण मेघक तार-तारकेँ तोड़ि-फोड़ि आर-पार भइए क' रहतै। आ सूर्यक प्रकाश धरती पर पहुँचिए जयतै। कोनो तागति एहन नहि छै जे बरजोरी रोकि क' ओकरा गुलाम बना सकय। किये तँ चेतनाक सहज स्वभाव थिकै आनन्दपूर्ण मुक्तावस्था; आ, एहने अवस्था जाहि कविमे होइ छै, सैह करै छै सूर्योदयी चेतनाक कविता।

हिन्दी कविताक छायावादी युगमे जन्म लेल हमर कविताक ई परम सौभाग्य छल। जे प्रेरणा हमर बाल-कविकें सम्मोहित कयने छल आ आइ धरि निरन्तर अपन प्रशस्त राजपथ पर अग्रसर कयने आबि रहल अछि से हमरा अनायासे परम्परासँ प्राप्त भ' गेल। एहि बीचमे जानि ने कतेक चढ़ाओ-उतार, भूल-भटकाव, भ्रम-मोह, निद्रा-मूर्च्छाक प्रसंग आयल-गेल होयत, तकर हिसाब नहि। किन्तु आस्था एवं श्रद्धा-विश्वासक एकमात्र ध्रुवतारा अन्हारो रातिमे, जखन कोनो चान-सूर्य प्रकाश देबामे असमर्थ भ' जाइत छलाह, चमकैत सही दिशाक संकेत दैत रहल। शब्द-उत्सव जखन अपन मूलाधार शंखे कें पकड़ि लैं छँ, तखन प्रबुद्ध जीवन मे जो घटना घटित होब' लागै छँ, जकरा आध्यात्मिक भाषामे कहल जाइ छँ–रूपान्तर! परम चेतना अपन काज कर' लागै छँ। जे रचना पहिने एक मूर्च्छित आनन्दक आवेगमे होइत छँ, से आब सचेतन बोधक जागरणमे होब' लागै छँ। सुषुप्तिक स्वप्न भंग भ' गेल; तँ जागृतिक मस्ती रोआँ-रोआँमे रमि गेल। बेहोशिओ मे, शराब-भाँगक निसांमे कविता-कलाक संवेदना भ' सकैत छँ, ई तँ स्पष्ट रूपसँ तखने बूझि पड़त, जखन होशमे कलम पकड़बाक लूरि आबि जायत। नहि तँ सतहीं कवि जकाँ हमरो यैह बूझल छल जे, जाहि मस्तीमे कविता लिखल जाइ छँ, से कोनो मादके पदार्थमे भेटैत छँ। निजानन्दक मस्ती किछु आओरे वस्तु थिकै, एकर पहिचान तँ अनुभूतिक गहन गहींरेकें नापला सँ संभव होइत छँ। कुण्ठा, मृत्यु, अन्हार आ छाँहि यदि सत्य छँ, तँ प्रकाश अमृत आनन्द, उत्सव आदि कोना मिथ्या भ' सकै छँ। आ, जे कवि स्वयं एहि विषम दुर्गतिसँ बाहर नहि भ' सकै छँ, से यदि लाख-लाख दीन-दुर्बल दलित-पतित मानवक मसीहा बनि क' समाजमे परिवर्तन लाब' ले अरण्य-रोदन करै तँ एहिसँ बढ़िक' विडम्बना वा दुर्भाग्य की भ' सकै अछि। कोना तँ आइ पूरा समाजे कि संसारे रुग्णावस्थामे पहुँचि गेल छँ। ककरो अपन माथक टेटर नहि सूझै छँ, मुदा आनक आँखिक फुल्ली फराकेसँ देखाइ पड़ै छँ। अपन सुधार कियो ने कर' चाहै छँ। सभ दोसरेक इलाज पर भिड़ल छँ। एहिसँ देश-देश आ व्यक्ति-व्यक्तिमे जे वैमनस्य, असौकर्य आ अविश्वासक लहरि पसरल जाइ छँ, ताहि ज्वाज्वल्यमान तथ्यकें के नहि जानैए। मुदा, कवि सततिकालसँ समाजक सचेतन वर्गमे परिगणित

होइत अएल। अछि। तेँ पहिने हुनकेसँ ई आशा-अनुरोध कयल जा सकैत अछि, जे ओ जागथु। कुण्ठा आ संत्रासक बोखार लागल छनि, तँ ओकर इलाज करावथु। कुण्ठे-संत्रासकेँ अपन स्थायी पाहुन नहि मानि लेथु। अपन सहज प्रकृति. स्वाभाविक चेहरा-मोहरामे आबि जाथु। आ दुनियाँके आँखि फोलि क' देख' देथुन, जे कविक वास्तविक रूप केहन होइ छै। दीन-दुर्बल, गलित-पलित। कि भव्य, दिव्य-शुद्ध, सत्य। निर्भय-निरंकुश। किन्तु, ओहि दुर्वह मनःस्थितिकेँ सहेजि-सलेटि क' सही मार्गदर्शनमे ल' जायब भगवानेक असीम कृपासँ भ' सकैत अछि। साधारण व्यक्ति तँ ई बात सपनाइयो ने सकैत अछि। "सूर्यमुखी"क सार्थकता एहीठाम सिद्ध होइत अछि। एकर तात्पर्य दोसर तरहेँ एना बूझल जाय जे जाहि दीपक टेम बाहर प्रकाश फेकि रहल छै, ओकर अपन नीचामे अन्हारे छै! जँ ई अन्हारो प्रकाशमे रूपान्तरित भ' जाय, तँ दीपकेँ ई कहबला नहि केओ रहतै, जे 'दीपक तरमे अन्हार!' आ, से आब, जहियासँ बिजलीक बत्ती जरय लागल अछि, तहियासँ ई समस्या किछु कि बहुतो अंशमे दूर भ' गेल अछि! मुदा, मानव-चेतनाक स्तर पर ई प्रश्न-चिह्न विराट् रूप धयने, लागल अछि—'परोपदेशे पाण्डित्यम्,' भले ओ आचार्य मम्मटक वाणीमे 'कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे' किए ने होअय! जीवन जँ आध्यात्मिक भ' सकै छै, ऊर्ध्व चेतनामे जाग्रत-प्रबुद्ध भ' सकै छै, तँ कविक जीवन आ कविता किए ने सचेतन भ' सकैए? कवि जँ अपन क्षुद्र अहं सँ ऊपर उठय, आ क्रमशः परिवार, समाज, देश एवं सम्प्रदायसँ ऊपर उठि क' संपूर्ण विश्वमे अपन आत्माक विस्तार क' लेअय, तँ ओकर कविता कि ताहि सार्वभौमत्वसँ वंचित रहि सकैए? कोना रहत, जँ रह' चाहय? कलाकारकेँ छोड़िक' कला कि कतहु जा सकैए? ओना, जेना चन्द्रमाक कला सूर्यक उधार लेल प्रकाश छै, तेना कविओक कविता किछु पढ़ि क', किछु सुनि क', उच्चस्तरीय होयबाक आभास द' सकै छै! मुदा, नकदी अनुभूतिक अपन सुगन्धे किछु अपूर्व होइ छै जाहिसँ कविते नहि, कविओ गौरवान्वित होइ छै आ संसारो ओहिसँ कृतार्थ!

पाँच

साहित्यमे आइ विशेष रूपसँ कविता-विधापर चारू दिससँ जेहन कुठाराघात भ' रहल छै, ताहिसँ ई बुझबामे ककरो कोनो संदेह नहि रहतै कि

आब कवि वा कविताकेँ जीब' ले नहि, मार' ले सब प्रयत्न भ' रहल छैं ! एहिमे निश्चित रूपसँ विज्ञानक प्रबल हाथ छैं ! जहियासँ विज्ञानक चमत्कार एहि धरती पर बढ़' लगलै तहिएसँ कवितो पर वज्र-प्रहार प्रारम्भ भ' गेलै ! यूरोपमे एकर प्रभाव बहुत वर्ष पूर्व देखल गेल छलै। कारण जे ओही ठाम सबसँ पहिने विज्ञानक नवयुग प्रारम्भ भेल रहय ! संघर्ष एते जबरदस्त भेल छलै जे कीट्सकेँ Truth is beauty and beauty truth लिखि क' विज्ञान आ कविताक समाहार कर' पड़लनि आ शेली सन कोनो आन महाकविकेँ लिखऽ पड़लनि Defence of poetry अर्थात् "काव्य केर प्रतिरक्षा"– आक्रमण कतेक भयानक रहल होयतय, एहिसँ किछु अनुमान कयल जा सकैत छैं ! मुदा, जहियासँ दू-दूटा विश्वयुद्ध मचाओल गेल आ चन्द्रमा पर जीवित मानव प्राणीक पयर पहुँचल, तहियासँ जेना काव्यक कल्पने मे आगि लागि गेल होअए ! हमरा एकटा हिन्दीक कवयित्री कहैत छलीह जे आबहु की कवि-लोकनि अपन प्रेयसीक मुँहक उपमा चानसँ द' सकै छथि, जकरा ने अपन प्रकाश छैं, ने पानि छैं, ने हवा छैं—जे निर्जन, भयावह, ऊभड़-खाभड़, सूखल-टटायल परती-परांत भूमि छैं ! आ कवि कहै छथि—अनेकानेक सुन्दरसँ सुन्दर नाम ध' ध' क', कि तँ सुधाकर ! पीयूषवर्षी ! आओर नहि जानि, कि-कि ? हम हुनका कि उत्तर दितियनि, जे स्वयं विदुषी आ चन्द्रमुखी युवती रमणी छलीह। हुनका स्वयं बूझक चाहियनि जे काव्य-जगत केर कोनो उपमा गणित अथवा पदार्थ-विज्ञानक भाषामे नहि देल जाइ छैं ! कविताक सत्य आ विज्ञानक सत्यमे मूलतः कोनो फर्क नहि छैं; मुदा, भाषाक अभिव्यक्तिमे तँ सरिपहु आकाश-पातालक अन्तर छैं !

से, पश्चिम गोलार्धक काव्य-धारा जेहन परिस्थितिसँ गुजरि चुकल छैं, से आब आधुनिक भारतीय कवि आ कविता भोगि रहल अछि ! कविताकेँ लेने-लेने कवि लोकनि बाँस-घाट धरि पहुँचा देलनि; मुदा, ततबेसँ संतोष नहि भेलनि ! ओकरा मुखबाती द' क' फूकि देतथि आ उतरी गरामे बान्हि नीक जकाँ ब्रह्म-भोज करा श्राद्ध क' दितथि, तँ बुझितहु, हे, लिअ ! नव पीढ़ीक एकटा महत् साहसिक कार्य तँ भेल ! कुरुक्षेत्र तँ जीतल गेल ! मुदा, भेल कि जे भीष्म पितामहकेँ उन्टा टाँगि, नीचा मूड़ी ऊपर पयर द' क' बाँसमे लटका देल गेल आ ओहिठामसँ ढोल बजबैत, 'रामनाम सत्य' बजैत

हो-हो करैत, कोहा फोड़ैत घर घूरि कऽ आबि गेलाह, फन्नामे लटकौने एकटा बेस नम्हड़ पुछल्ला, जकर नाम धयलनि ओ "अ-कविता"—अर्थात् ऐन्टी-कविता, कविताक ठीक विपरीतमे ! मुदा, अकवितो करैत कहबऽ चाहै छथि, कविए ! कतेक बड़ विडम्बना पोसि रहल छथि, देखल जाओ कनेक ! हमरा कविता अथवा कविताक आन कोनो वाद-विवादसँ राग-द्वेष नहि रहल अछि। हम ककरो विरोधमे नहि ठाढ़ छी ! हम कविताकेँ ककरो पक्ष वा विपक्षमे ठाढ़ करब अनुचित बूझै छी ! वस्तुतः कवि तँ संपूर्ण सृष्टिक प्रति संवेदनशील होइत अछि ! कबीर कहै छथि—"साईं के सब जीव हैं, कीड़ा कुंजर दोय। कापर किरपा कीजिए ? कापर निर्दय होय।" जे समस्त सृष्टि केर अणु-परमाणुमे अपने आत्माकेँ देखैत अछि, आ इहो सत्य अछि जे एही दृष्टिसँ देखनिहार भावुक व्यक्ति कैयो कवि होइत छथि, ओकरा ले मानव तँ मानवे, पशु, तृणसँ ल' क' माटि-पाथर धरि सब चेतनेक स्फुरण बूझि पड़ै छै। ओकर भावनामे के शत्रु आ के मित्र। के अपन आ के पराया। व्यवहारमे कैयो शत्रु-मित्र, हित-सम्बन्धी, कर-कुटुम्ब भले बूझि पड़य आ देश-कालक अनुसार सब लौकिक व्यवहार यथावत् भले चलैत रहय, मुदा अन्तर्जगतमे चेतनाक एकत्वो निरन्तर बनल रहतै। ओकर सम्बन्ध-विच्छेद कोनो परिस्थिति वा कोनो कालमे नहि होयतै। यैह "सूर्यमुखी" चेतनाक लक्षण अछि, जे सततिकाल सूर्यक दिस उन्मुख रहैत छै आ जकर प्रतिफलन हमर काव्य-पुरुषक अभीष्ट अछि। कविता द्वारा ई लक्ष्य प्राप्त कयल जा सकै छै। कविताक संगे-संग चेतनाक विकास भ' सकै छै। "सूर्यमुखी"क अभिव्यक्ति पद-पद पर ई घोषणा क' रहल अछि। कमलक जन्म आ पोषण भले कीचड़सँ होइत होअय, मुदा ओकर फूल जलाशयस उपर मूड़ी उठा क' सूर्य दिस ताकै छै—जेना वैदिक मंत्रद्रष्टा ऋषिक कंठसँ अपन स्वर मिलाक' गाबैत होअय—"आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।" आ, शब्दमे ओ शक्ति छै; जे चेतनाकेँ जगबै छै; चलबै छै; नरकेँ नारायण बना सकै छै। बेशक कवितो एहि उच्चतर चेतनाक साधन बनि सकै छै—जँ तेना भ' क' ओकरा साधल जाय।

छओ

"शेफालिका" सँ ल' क' ई प्रस्तुत कविता-संकलन "सूर्यमुखी" धरि हमर काव्य-यात्राक इतिहास-पुरुष जे मार्ग बनौने छथि, ताहिमे कालक विपुल आयाम

देखल जा सकैत अछि। "शेफालिका" मैथिलीमे हमर पहिल रचना थिक, जकर जन्म २ अक्टूबर सन् १९३६ ई०मे भेल रहय। तखन हम मुजफ्फरपुरमे छलहुँ आ प्रायः दोसरे-तेसरे 'भुवन' जी—मैथिली-हिन्दीक प्रख्यात श्रोत्रिय कवि श्री भुवनेश्वर सिंह "भुवन", जे अपन नामक अन्तमे "साहेब" पद लगा क' विशेष रूपें गौरवान्वित जकाँ बुझैत छलाह—सँ प्रायः साहित्यिक भेंट-मुलकाति होइत रहैत छल। अक्टूबर १९३६क किछु एम्हर-ओम्हर मैथिल महासभाक कोनो अधिवेशन होअबला छलय आ ताही संगे साहित्य-परिषद् एवं कवि-सम्मेलनोक जुटान प्रस्तावित रहय। प्रसंग-वश ओहि कवि-सम्मेलन केर अवसर पर पाठ कर' लेल एकटा मैथिली कविता रचि दय ले भुवनजीक विशेष अनुरोध भेल, जे हम तत्काल मानि लेल। हमर "शेफालिका" शीर्षक कविताक रचना ओही स्नेहानुरोधक सुगन्धित प्रतिफलन अछि, जकर श्रेय अनायासे 'भुवन' जीक पक्षमे जाय चाहैत अछि।

एहि सन्दर्भमे इहो मोन पड़ैं अछि, जे 'भुवन'जी जाहि तरहें मैथिली मे कोनो कविता-रचना करबाक अनुरोध कयने छलाह, ताही तरहें हुनक इहो आग्रह भेल छल, जे कोनो एहन कविता लिखल जाय, जे की मैथिली, की हिन्दी, दुनू भाषामे समान रूपें चलि सकय। हिन्दीवलाकें ई नहि बुझि पड़य, जे ई मैथिली थिकै आ हिन्दीबलाकें तहिना ई नहि बोध होय जे ई हिन्दी थिक। वस्तुतः, एहि प्रकारक विलक्षण रचनाक पाछाँ "भुवन"जीक अन्तश्चेतनामे कोन प्रेरक तत्व सक्रिय भेल रहनि, से ने ओ स्पष्ट बुझा क' कोनो बात कहलनि; ने हम एते उत्सुक छलिऐ, जे हुनका किछु पुछितिअनि। मुदा, जुआनीक उमगैत-उमड़ैत जोश छलय। कविताक अबस स्रोत सदिखन झड़-झड़ झहरैत रहय, जेना कोनो पर्वत-शिखरसँ जंगल-घाटीमे बहैत छल-छल करैत झड़ना। से आओ देखय ने ताओ! लेखनी छुबिते कविता प्रस्तुत भ' गेल। ठीक ओही दिन, जाहि दिन कोनो शुभ घड़ीमे "शेफालिका"क विरचना भेल होयत। ओहि कविताक प्रथम पाँती गीत-रूपमे एहि प्रकारें प्रस्फुटित भेल—"मंजुल मन्दार-मुकुल अभिनव वनकन्या।" ई अद्भुत कविता हिन्दी भेल, की मैथिली। की दुहूसँ विलक्षण सस्कृत? कहि ने। किन्तु, भाषा-मर्मज्ञ विद्वान लोकनि स्वयं पढ़ि क' निर्णय क' सकैत छथि, जे सौकर्य भेला पर हमर "माटिक दीप" शीर्षक कविता-संकलन मे

देखब संभव होयत। ओना समस्त क्रियापद-विहीन हमर ई कविता कोनोटा भारतीय भाषाक शोभा बढ़ा सकैत अछि, जकर जननी संस्कृत होअय। पता नहि, "भुवन"जीक साहित्य-कोषमे हमर एहि कविताक कोन उपयोग भेल। ताहि समयमे ई जनबा ले हमरा मनमे कोनो उत्कण्ठा नहि जागल, आ आब जँ जागबो करय, तँ "भुवन"जो सन सहृदय साहित्यिक लोकके पायब कत' ? अन्हार-मुन्हार साँझमे दीपक बाती लेसल नहि गेल कि आयल हव,क एक झोँका आ मिझा गेल दीप किछु काल झलफला क'। आब, बीचमे कालक एतेक अन्तराल ठाढ़ भ' गेल अछि व्यवधान भ' क' जे एके दिन "शेफालिका" आ ओ गीत, दुनूक रचना-प्रक्रियासँ गुजरितो ई कहब महा कठिन अछि जे पहिल रचना कोन थिक। ओना, प्रेरणा ले स्वयं प्रकृति-प्रियेसँ हमरा ततेक ने मौन-मुखर संकेत भेटैत रहल अछि, कि आन कोनो देवताक दरबज्जा खटखटाबक कहियो प्रयोजन नहि पड़ल। से जे होअय, कातिक सनक पुण्य मास छलइहे; भोरे-भोर हरसिंगारक गाछ पर लाल-लाल डंटी-बला उज्जर-उज्जर फूल; पात-पातमे फुलायल; झड़-झड़ झड़ैत डारिसँ। धरती पर गंगा-जमुनी पथार लागल; आ चारूकात दिशा-विदिशा मे गमकैत सुगन्धिक लहरि। आ ओहि लहरिमे लहालोट होइत कविक मन। धीरे-धीरे बहैत प्रभातक सरस समीर। समीरक तरंग पर हँसैत-खेलाइत नव-नव अंशुमालीक किरण; ओना तँ ब्राह्मी वेला अपने देव-मुहूर्त्त होइत छैं; आ, ओकरा संगे जँ हरसिंगारक सुगन्ध लागि जाय - तँ, साक्षात् स्वर्ग धरातल पर उतरि जाय, तँ किमाश्चर्यम् ? तेँ कहल, जे "शेफालिका" हमर जीवनक पहिल प्रातेसँ तेना ने हमरा विमुग्ध करय लागल, जे परिपूर्ण यौवनक मादक-मांसल उद्वेगक कथे की ? आइ बुढ़ोपन धरि पिण्ड नहि छोड़लक अछि; एखनो हरसिंगारक फुलायल गाछक सुरभित संनिधिमे अबिते हमर मन-प्राण जेना कोनो स्वप्न-लोकमे जाक' अर्द्ध-मूर्च्छित भ' जाइत अछि ! ई रहल "सूर्यमुखी"क परिप्रेक्ष्यमे एक दोसर छोर पर "शेफालिका"क कथा !

सात

आब, एहि प्रसंगमे जँ डूबि क' देखल जाय, तँ लागत जे हमरा जीवन मे फूल सँ जेना लगाव भ' गेल अछि, तेना संसारक आन कोनो वस्तुसँ किएक

ने ? बात किछु अंशमे बहुत महनीय अछि। फूलसँ हमरा विशेष अनुराग अछि। एतबे नहि, प्रत्येक फूलक आकृति, प्रकृति एवं सुगन्धक हमरा मनमे एक विशेष परिकल्पना भ' गेल अछि। कोन फूल किए कोनो विशेष समय वा अवसर पर कोनो खास प्रभाव दै छै, तकर कारण जनबा ले, ऊहापोह करबा मे अक्षम रहितो, अनुभूति तँ होइते छै, आ, अनुभूतियोमे जे प्रखरता सुगन्धक पक्षमे होइत छै, से रंग वा रूपक आग्रहमे नहि। गन्ध जेँ कि धरतीक खास अपन गुण छै तँ कि नहि ओ धरतीसँ मानव-प्राणीकेँ सोझे जोड़ि दै छै ? आ, एहि दृष्टएँ जेना ब्राह्मीवेलाक फूल हरसिंगार वा शेफालिका चेतनाक कोनो स्वर्गीय द्वारक उद्‌घाटन करैत छै, निद्रालस प्राणक तन्तुकेँ जगा क' शुचिताक एक गंगा-धारमे डुबा दैत छै; तहिना सूर्यमुखियोक एक अपन दिनमान छै; प्रखर-प्रोज्ज्वल चेतनाक एक अनाविल अस्तित्व छै ! सृष्टिकर्त्ताक प्रति एक विनम्र आत्म-निवेदन छै ! पूजा, प्रार्थना ······ चेतनाक स्तर पर सब फूलक अपन-अपन खास वर्ग छै, विकास छै, रंग-रूप आ सुगन्ध छै ! आ, एहि क्रममे कोन फूलक नाम लिअऽ, केकरा छोड़ू ? कहल नहि जाय ! चम्पा, चमेली, जूही, गुलाब, सब जेना एक-एकटा साक्षात् सजीव चैतन्य-मूर्त्ति जकाँ हमरा सोझामे ठाढ़ भ' जाइत अछि ! कोनो लजाइत, कोनो बतिआइत; कोनो मौन, कोनो मुखर; कोनो लजवंती लता; कोनो 'बेला खिलय अधराति'; आ, मन पड़ि जाइत अछि प्राण-मनोन्मादिनी रजनीगन्धा ! भरि राति जे सूत' नहि दैत अछि अपन महकैत जूड़ाक महमह सुगन्धसँ ! की अपूर्व सुगन्धक जुआरि ! लहरि पर लहरि ! सम्पूर्ण चेतना केर आकाश, अपन लाख-लाख कलीक फुलायल-फुलायल, पातर-पातर डोराक अदृश्य बाँहिसँ बान्हि लेब' ले टकुआ-तान भेल—के एहन नीरस हयत, जे ओहि कवित्व-पूर्ण-रस-विदग्धता पर अपन जान नहि निछावर क' देअय ? ई रजनीगन्धा फूल कि भेल, हमर प्राण-प्रिया भासिनी भ' गेल, जे राति-भरि ने अपने सूतय, ने हमरा सूतऽ देअय—संपूर्ण संवेदनाकेँ प्रगाढ़ मादकतामे बोरि क' तेना ने मूर्च्छा-प्रमादसँ भरि दैत छै, जे फेर कथी ले कोनो होशो-हवास रहय ? सय-सय बोतलोमे कि निसा एहन होयतै ? राति खाहे इजोरिया हो वा अन्हरिया—रजनीगन्धा अपन रंग लयबे करत ! रातिक रानी अपन जुआनी देखयबे करत ! रातिए-जकाँ आलस्य, अन्हार आ उद्वेगसँ भरल !

मुदा, सब फूलसँ फराक, सबसँ बिलक्षण "सूर्यमुखी"क चेतना छै !

रजनीगन्धामेँ ठीक विपरीत, तँ "शेफालिका" सँ किछु विकसित ! ओना तँ ऋतुराजक प्रशस्त आँगनमे जे सब फूल हँसै छै, खेलाइ छै; ताहि सबमे हमर दृष्टि ईश्वरीय चेतनाक कोनो-ने-कोनो मूर्त्तिक दर्शन क' लैत अछि आ सृष्टिक एहि अनमोल वैभवपर सृष्टिकर्त्ताक आगाँ नतमस्तक भ' जाइत अछि; मुदा, विशेष रूपेँ चन्द्रकला शैशवक अबोधावस्थामे आ रजनीगन्धा यौवनक अन्ध आवेगमे प्रबल रूपसँ अभिभूत कयने रहय। 'शेफालिका' ओहि क्रममे तकर बाद आयल। मुदा "सूर्यमुखी" फूलक चेतना अबैत-अबैत हमर संपूर्ण बयस बीति गेल ! वृद्धावस्था आबि गेल। सिमरियामे राजेन्द्रपुलक नीचा सँ जानि ने गंगाक कतेक पानि बहि क' बंगालक खाड़ीमे खसि पड़ल होयत ! आ, हम अन्हार गुजगुज राति-विरातिमे जाड़े थर-थर कँपैत, धुन्ध, कुहेस आ हड्डी पर्यन्त गला देब'बला ठंढ केँ आँड़ैत, एहि आशा-प्रत्याशामे अपन चिर-धरोहरकेँ छातीसँ लगौने रहि गेलहुँ जे आब प्रात होयत ! सूर्योदय देखब ! प्राणक दुआरि आ मनक खिड़की सबटा ओहिना खुजले राखिक' निर्निमेष प्रतीक्षा कयलहुँ जे कखन कोन किरण हमर अन्तर-तर केर सूतल तारकेँ छूबि क' जगा जाय। सतति ई उद्वेग आ भय लागल रहैत छल जे हमरा औंघाइत देखि क' कहूँ ओ नवेली-अलबेली रश्मि-माला दरबज्जा बन्न देखि क' उनटे पयर घूरि ने जाय। ब्राह्मिए बेलामे जागिक' प्रभातीक सुरमे कतेक "शेफालिका"क गीत गओलहुँ, से अतीत एखनो बहुत दूर नहि गेल अछि। ओ साक्षी द' सकैत अछि कि सूर्योदयसँ पहिने, भुरुकवा तारा उगिते, कनेक अन्हार आ कनेक इजोतक गंगा-जमुनी आसमानक नीचामे, हरसिंगारक डारिसँ खसैत फूलक पथार धरती पर पसरल, के कतेक बीछि क' अपन खोड़ामे भरि सकैत अछि — तकर होड़ लागैत रहय। अहलभोरक गमगम करैत सजीवनी हवा एखनो सुगन्ध चोरा क' हमर सपनामे घुसि जाइत छल आ हम चेहाक' उठैत रही, तँ देखैत रही जे आसमानक सबटा तरेगन लालरंगक चँवरी पहीरि माटिमे लोटा रहल-ए। ई भुवन-मोहन दृश्य देखि क' अरसिको पुरुषमे रसिकताक संचार भ' सकैत छै, तखन जे जन्मजात काव्य-प्रतिभासँ सम्पन्न छथि, हुनक भावुकता जँ हिमालय केर शिखर पर पहुँचि जाय, तँ कोन आश्चर्य।

तेरह डंडक एहि संक्रान्ति-कालमे हमर मनःस्थिति केहन छल, एकर किछु आभास कोनो अज्ञात कविक निम्नांकित संस्कृत-कविता द्वारा लगाओल जा सकैत अछि :—

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्री.।
इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे
हा हन्त-हन्त नलिनीं गज उज्जहार।

एहि मर्मतलस्पर्शी कवितामे भावुक कविक कथन छनि जे एकटा मधुकर सायंकालमे कोनो कमल-कोश मध्य बैसल रसपान करैत छल कि एकाएक कमलक पँखुड़ी सूर्यक अवसान होइते मात्र मुना गेलै आ फलस्वरूप भौंरो ओहि फूलमे बन्न भ' क' ई सोचय लागल जे राति बीति जायत, तँ प्रभात होयत आ सूर्य फेर उगताह; तखन कमलो केर पँखुड़ी खूजि जायत। आ हम ओहिसँ बाहर भ' जायब। मुदा, जहिना एहि छगुन्ता मे भौंरा सगर राति बिता क' भोर करय चाहैत अछि कि तावत् कोनो दिससँ महाकाल-रूपी एक मदमत्त हाथी आबि जाइत छै आ कमलक डंटीकेँ जड़ि-समेत उखाड़ि-पुखाड़ि क' बेलाग अलग फेकि दै छै। कथिएक किए? कोनो सहृदयक अन्तरात्मा एहि महाकारुणिक घटना पर 'हाहा' क' सकै अछि। मुदा, भौंराक चेतनामे जँ एहन कोनो अमृत-ऊर्जा रहितय, तँ की ओ गजराज द्वारा दूर फेकाइओ क' बाँचि नहि जैतय? जे दुर्दम्य चेतनाक प्रवाह पाथरक वज्र-कारा तोड़ि क' निकलि जाय छै, ओकरा ले कि असंभव छलै जे फूलक कोमल पँखुड़ीमे बन्न भ' क' प्राणोत्सर्ग क' दितय। मुदा, जाहि अपराजेय चेतनाक अभावे ओ फूलक कारागारमे राति भरि बन्दी जीवन बितौलक; प्रेम, आशक्ति वा व्यामोह, जे नाम धरिऔ, तकर कारणेँ कमलकोशो सन कोमल आवरणकेँ विदीर्ण नहि क' सकल—जे ओना काठोमे छेद क' दैत छै, यदि बादोमे रहफड़ा क' रहि गेल होय, तँ उचिते बुझना जाइत अछि। हम लाख-लाख धन्यवाद दैत छिअनि परमात्माकेँ जे पूर्वोक्त कविताक भौंरा केर दुर्भाग्यपूर्ण मनःस्थितिमे अबितो परम चेतनाक सरस सूर्योदयसँ हमरा कथमपि वंचित नहि कयलनि। महाकालक गजराज केर प्रचण्ड सूँड़ द्वारा कमल-डंटीक नाश होइत-होइत प्राची दिगन्त सूर्यक आभासँ भासमान भ' उठल! आ संसारक मृनल कमल-कोश धर' द' खुजि गेल आ फर' द' हमर अन्तरात्माक भौंरा उड़ि गेल! उड़ि गेल! ओ उड़ल जाइत अछि, आ ओकरा पकड़' ले दुनियाँक महाजाल विछल अछि—व्याधाक कम्पा आ फन्ना लागल अछि, मुदा कथी ले ओ ककरो हाथ औतइ?

मनमे तँ छल जे हम एहि प्रसंगमे अपन भाषा, शिल्प, छन्द आदि विषयो पर किछु विचार व्यक्त करितहुँ—मुदा, चेतनेक गप्पमे शब्दक कलेवर एतेक ने बढ़ि गेल, जे आब लेखनी हाथसँ छूट' चाहै अछि। 'बान्हसँ खत्ते ने उँच' भ' जाय, तकरो खेआल राख' पड़त। तेँ, आब पाठक लोकनि केर धैर्यक बहुत परीक्षा नहि ल' क' सोझे कविता दिस आँगुर-संकेत करैं छिअनि, जे पात परसल अछि! भोग लगाउ! स्वयं रस लिअ। 'अलं विवादेन'। सूनल संगीत तँ मधुर होइते छैं, अनसूनल तँ आओरो मधुरतर होइत छैं, जेना कीट्सक कहब छनि—

"Heard melodes are sweet, but those unheard are sweeter."

"शेफालिका" मे जँ हम सत्यक बोध पौलहुँ, तँ रजनीगंधामे सौन्दर्यक; आ,'सूर्यमुखी"मे साक्षात् मंगल-मूर्त्तिक दर्शन क' जीवन कृतार्थ भेल। अपन भावुक पाठकसँ अन्तमे येह कहि क' हम फराक भ' जयबाक आकांक्षी छी जे आब ओ स्वयं 'सूर्यमुखी''क आत्माकेँ झाँकि क' देखथु आ जँ किछु मनोनुकूल भेंटि जाइनि, तँ एहि कविकेँ नहि, ओहि परम चैतन्यकेँ हार्दिक धन्यवाद करथुन, जकर कनेक चरण-स्पर्श पबिते पाथरोमे प्राण आबि जाइत छैं आ 'मूक होहि वाचाल, पंगु चढ़हि गिरिवर गहन।'

हमर कविता-संकलन प्रकाशित कर' ले मैथिली अकादमीक कर्मठ अध्यक्ष पं० श्रीकान्त ठाकुर जे उत्कंठा देखौलनि आ अकादमीक सुयोग्य निदेशक श्री योगानन्द झा जाहि तत्परतासँ "सूर्यमुखी"केँ प्रकाशन दिस अग्रसारित कयलनि, ताहिसँ हमर उत्साह विशेष बढ़ि गेल। एहि सारस्वत सहयोगक हेतु हम दुनू महानुभावक प्रति अपन हार्दिक आभार व्यक्त करैं छियनि। तहिना अकादमीक सुयोग्य पदाधिकारी श्री गोविन्द झाओक हम आभारी छिअनि, जनिकासँ प्रूफ-संशोधनक संगे मुद्रण, भाषा एवं वर्त्तनी सम्बन्धी सुझाव प्राप्त होइत रहल, यावत् धरि पुस्तक प्रेसमे छलय। अकादमीक परिधिमे आनो जे केओ महाभाग ज्ञात अथवा अज्ञात रूपें एहि काव्य-संकलन केर प्रकाशनमे योगदान कयलनि अछि, तनिको हम आन्तरिक धन्यवाद दैत छियनि। अकादमी सँ बाहरोक कतोक हितैषी साहित्यिक बन्धु लोकनि एहि प्रकाशनमे हमर उत्साहवर्द्धन कयलनि अछि, जाहिमे प्रमुख "मिथिला मिहिर" केर प्रधान